महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय,मोतिहारी,बिहार

मानविकी एवं भाषा संकाय

संस्कृत-विभाग

एम.ए. द्वितीय सत्र

प्रश्न पत्र- चतुर्थ

पाठ्यशीर्षक- योगदर्शनम्

कोड-SNKT 2004

उपशीर्षक : महर्षि पतञ्जलिकृत योगसूत्र में योग स्वरूप निरूपण

प्रस्तुत कर्ता

डॉ.बबलू पाल

सहायक आचार्य

संस्कृत विभाग

महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय,

मोतिहारी,बिहार

महर्षि पतञ्जलि एवं योगसूत्र का संक्षिप्त परिचय :

महर्षि पतञ्जलि –

योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि का दर्शन,व्याकरण एवं चिकित्सा जगत् में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनके व्यक्तित्व के ऐतिहासिक वृत्त को संक्षेप में कुछ बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है। कतिपय विद्वानों के मतानुसार विभिन्न कालों में हुए पतञ्जलि या पतञ्जलि नाम के आचार्य का विवरण मुख्य रूप से तीन सन्दर्भों में मिलता है-

१. योगसूत्र के प्रणेता
२. पाणिनि व्याकरण के महाभाष्यकार
३. आयुर्वेद के किसी संदेहास्पद ग्रंथ के प्रणेता

उपर्युक्त सन्दर्भों के विषय में एक सुप्रसिद्ध श्लोक है-

योगेन चित्तस्य पदेन वाचा मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

अर्थात् मैं करबद्ध होकर ऐसे पतञ्जलि मुनि का प्रणाम करता हूँ जिन्होंने योग के द्वारा चित्त शुद्धि,व्याकरण के द्वारा वचन की शुद्धि और आयुर्वेद के द्वारा शरीर शुद्धि का उपाय बताया।

जन्म स्थान :

इनके जन्मस्थान के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि ये कश्मीर तथा कुछ का मत है कि ये आधुनिक उत्तर प्रदेश के गोण्डा निवासी थे। अत: कुछ विद्वान् इन्हें गोनर्दीय कहकर उत्तर प्रदेश के गोण्डा का निवासी बताते हैं तो कुछ इन्हें शेषनाग का अवतार बताकर कश्मीर के नागू जाति के ब्राह्मण से इनका सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

समय :

महर्षि पतञ्जलि के जन्म समय का स्पष्ट निर्धारण यद्यपि नहीं हो पाया है किन्तु अनेक साक्ष्यों के आधार पर विद्वान् लोग इनका जन्म समय २०० ई. स्वीकार करते हैं।

नामकरण :

कुछ साक्ष्यों के आधार पर विद्वान् लोग इन्हें 'सहस्रजिह्व'एवं पतञ्जलि नाम से अभिहित करते हैं। विशिष्ट शास्त्रज्ञान और विभिन्न भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् होने के कारण इन्हें 'सहस्रजिह्व' कहा गया। इसीलिए हजारों जिह्वा वाले के रूप में कल्पना करके शेषावतार के रूप में इनको प्रसिद्धि भी मिली।

एक किंवदन्ती के अनुसार एक बार एक ब्राह्मण नदी में सूर्य को अर्घ्य दे रहा था तो उस समय उसकी अञ्जलि में एक बालक आ गया, बाद में उस ब्राह्मण ने उस बालक को शिक्षा-दीक्षा दी जो आगे चलकर पतञ्जलि नाम से विख्यात हुआ।

राज्याश्रय :

विद्वानों के मतानुसार इन्हें शुंगवंशीय पुष्यमित्र शुंग का आश्रय प्राप्त था।

अन्य : कुछ विद्वानों का मत है कि महर्षि पतञ्जलि योगसूत्र के केवल संकलनकर्ता मात्र थे जैसाकि योगसूत्र के प्रथम सूत्र से भी विदित होता है- 'अथ योगानुशासनम्' अर्थात् मैं अब परम्परागत योग विद्या का आरम्भ किया जायेगा। इससे विदित होता है कि यह योग विद्या इनसे भी पूर्व प्रचलित थी जिसे ये सूत्रात्मक रूप में प्रस्तुत किये हैं। सूत्र के लक्षण से भी इसे सहजता से समझा जा सकता है-

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवत्विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदु:॥

योगसूत्र

योगदर्शन भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय का एक महत्त्वपूर्ण और प्रायोगिक दर्शन है। इसकी चर्चा भगवद्गीता आदि अनेकों ग्रंथो में की गई है। योगदर्शन के सन्दर्भ में महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि- **नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं,नास्ति योगसमं बलम्।** अर्थात् सांख्य के समान ज्ञान और योगदर्शन के समान कोई बल नहीं है। महाभारत के उक्त कथन से योगदर्शन के माहात्म्य को समझा जा सकता है। चित्तवृत्ति का निरोध या योग ही सर्वश्रेष्ठ बल है। वृत्तिनिरोध का अर्थ है किसी एक इच्छित विषय में चित्त को स्थिर रखना अर्थात् अभ्यास के द्वारा अपनी इच्छानुसार चित्त को किसी विषय में स्थिर रखना। जब चित्त में स्थिरता उत्पन्न हो जाती है तब कोई भी मनोवृत्ति चित्त में स्थिर की जा सकती है। मनुष्य की सबसे बडी दुर्बलता यही है कि चित्त में सदिच्छा को स्थिर रख पाये। जब चित्त स्थिर हो जाता है तो मन में सदिच्छाएँ स्थिर रह सकती हैं। स्थिर चित्त वाले पुरुष में मानसिक बल अधिक रहता है। इस चित्त के स्थैर्य में जितनी अधिक वृद्धि होगी उतना ही मानसिक बल भी बढेगा। चित्त की स्थिरता की अन्तिम सीमा समाधि है जहाँ पुरुष अपने को भूले हुए की तरह इच्छित विषय पर चित्त को स्थिर रखता है।

योगदर्शन के प्रतिपाद्य विषयों के विवेचन हेतु योगसूत्र चार अध्यायों में विभक्त है जिन्हें 'पाद' की संज्ञा दी गई है-

पाद	सूत्रों की संख्या
समाधिपाद	५१
साधनपाद	५५
विभूतिपाद	५५
कैवल्यपाद	३४

योगसूत्र की प्रसिद्ध टीकाएं/ व्याख्या ग्रंथ :

ग्रंथ	ग्रंथकार	समय
व्यासभाष्य	व्यास	द्वितीय शताब्दी ई.
तत्त्ववैशारदी	वाचस्पति मिश्र	१०वीं शताब्दी ई.
भोजवृत्ति	भोजराज	११वीं शताब्दी
योगवार्तिक	विज्ञानभिक्षु	१६ वीं शताब्दी
योगसारसंग्रह	विज्ञानभिक्षु	१६वीं शताब्दी
भावाजीगणेशीयावृत्ति	भावाजीगणेश	१७वीं शताब्दी
नागोजीभट्टीयावृत्ति	नागोजीभट्ट	१७वीं शताब्दी

योग शब्द की व्युत्पत्ति

योग शब्द जिस धातु से निष्पन्न होता है वह पाणिनि व्याकरण के अनुसार तीन गणों में प्राप्त होता है-

१. युज् समाधौ (दिवादिगण)+ घञ् = समाधि।
२. युज् संयमने (चुरादिगण)+ घञ् = संयमन।
३. युजिर् योगे (रुधादिगण)+ घञ् = कर्ता के अर्थ में संयोग अर्थ होगा तथा करण अर्थ में घञ् प्रत्यय लगने पर संयोग-करण अर्थ होगा।

इस प्रकार गण भेद से योग शब्द के प्रमुख अर्थ समाधि,संयमन तथा योग या संयोग होते हैं इन तीनों प्रकार की व्युत्पत्तियों में 'युज् समाधौ' से ही योग शब्द की निष्पत्ति मानी जा सकती है जिसे विद्वान् लोग स्वीकार भी करते हैं क्योंकि महर्षि पतञ्जलि ने भी योग को समाधि ही कहा है।

योग का लक्षण

महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन के अपने ग्रंथ योगसूत्र में योग का लक्षण देते हुए कहा है-

योगश्चित्तवृत्ति निरोध: अर्थात जिससे चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाये वह योग कहलाता है अर्थात् चित्तवृत्तियोंका निरोध ही योग है। इस योग को ही महर्षि पतञ्जलि ने समाधि कहा है। भाष्यकार ने सार्वभौमश्चित्तस्य धर्म: कहा है। आङ्ग्लभाषा में इसे Concentration या Contemplation कहा जा सकता है। ग्रंथकार ने इसके दो भेद बतलाया है- सम्प्रज्ञात समाधि एवं असम्प्रज्ञात समाधि। भाष्यकार ने इन दोनों प्रकार के योगों के विषय में कहा है-

सम्प्रज्ञात समाधि-

यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति क्षिणोति च क्लेशान्कर्मबन्धनानि श्लथयति निरोधमभिमुखं करोति च।

असम्प्रज्ञात समाधि –

सर्ववृत्ति निरोधे त्वसम्प्रज्ञात समाधि:।

वृत्तियों से युक्त चित्त की स्थिति तथा वृत्तियों के निरोध हो जाने पर जो स्थिति होती है उसे निम्नलिखित चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है-

विचलित चित्त (सामान्य मनुष्य का चित्त)

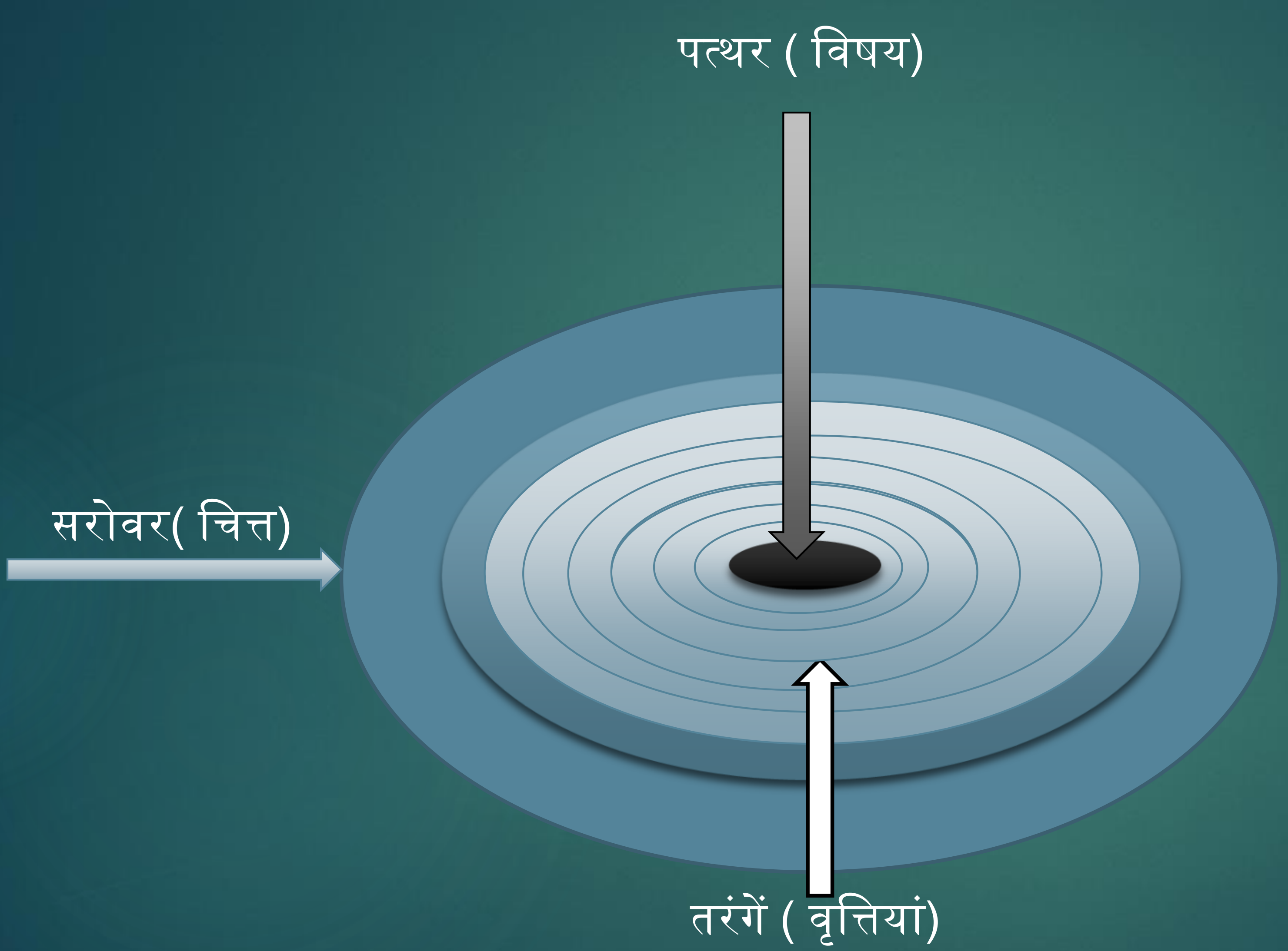

निस्तरङ्ग चित्त (योगी मनुष्य का चित्त)

सरोवर (चित्त)

चित्त का स्वरूप,भूमियाँ एवं वृत्तियाँ

- चित्त का अर्थ है अन्त:करण। मनुष्य को उसके कार्यों में प्रवृत्त कराने का कारण चित्त ही है। यह चित्त ही समस्त शारीरिक क्रियाओं का प्रेरक है। किन्तु आत्मा के शरीर में रहने तक ही यह शारीरिक क्रियाएँ संचालित होती हैं, आत्मा का शरीर से निकल जाने पर समस्त शारीरिक क्रियाएँ भी बन्द हो जाती हैं।
- अत: यह प्रश्न उठना स्वाभाविक हो जाता है कि क्या आत्मा और चित्त एक ही हैं? वास्तव में आत्मा और चित्त को पृथक्-पृथक् करके जानना न केवल दुष्कर है अपितु असम्भव है क्योंकि दोनों में से किसी एक की अनुपस्थिति में दूसरे को जानना असम्भव है। जहाँ आत्मा शरीर में चेतना का कारण है वहीं चित्त चेतन शरीर द्वारा की जाने वाली समस्त क्रियाओं का कारण है।
- चित्त का विषयों की ओर प्रवृत्त होने के कारण उपन्न अवस्थाएँ सांसारिक बन्धनों में बांधती हैं। अत: योग के द्वारा चित्त में उत्पन्न वृत्तियों का निरोध हो जाने से चित्त स्थिरता को प्राप्त हो जाता है। चित्त के स्थैर्य में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे मानसिक बल बढता जाता है। मानसिक बल में वृद्धि हो जाने से चित्त समस्त विषयों से दूर होकर एक विषय में स्थिर होने लगता है। चित्त के स्थिरता की अन्तिम सीमा समाधि है जिसे योग कहते हैं। चित्त की अस्थिरता को चित्र सं. एक से समझा जा सकता है। (चित्र.१)
- योगसूत्र के भाष्यकार ने चित्त को चुम्बक की भाँति बताया है। चित्त के सम्पर्क में आते ही पुरुष चित्त में संचालित वृत्तियों के अनुसार सुख,दु:ख और मोह आदि का भोग करने लगता है। यही चित्त पुरुष को भोग और मोक्ष की तरफ ले जाता है। दो धाराओं में प्रवाहित होती हुई एक नदी चित्र के माध्यम से इस स्थिति को समझा जा सकता है।जैसे नदी की दो धाराएँ दो मार्गों की ओर ले जाती हैं उसी प्रकार यह चित्त भी दो मार्गों की ओर ले जाता है- एक धारा कल्याण(मोक्ष) की ओर ले जाती है तथा दूसरी सांसारिक बन्धनों में बांधती है। (चित्र.२) सामान्य मनुष्यों के चित्त में ये दोनों धाराएँ होती हैं किन्तु मोक्ष की ओर जाने वाली धारा बहुत हल्की होती है जबकि सांसारिक बन्धन की ओर जाने वाली धारा बहुत चौडी और प्रबल होती है।(चित्र.३)
  योगीजन की चित्तावस्था सामान्य मनुष्यों की चित्तावस्था के ठीक विपरीत होती है। मोक्ष की ओर जाने वाली धारा बहुत चौडी और तीव्र होती है तथा सांसारिक बन्धनों की ओर जाने वाली धारा बहुत हल्की व मन्द होती है। चित्र.४

चित्र.१

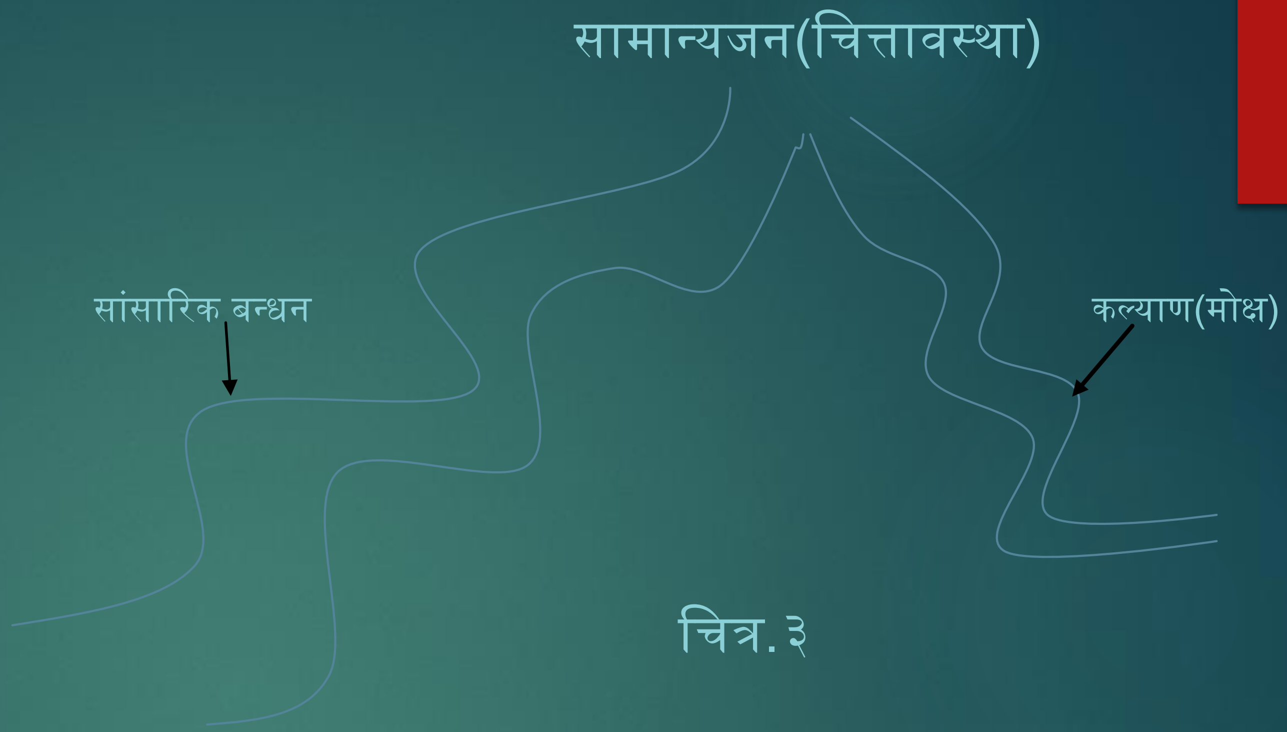

चित्र.३

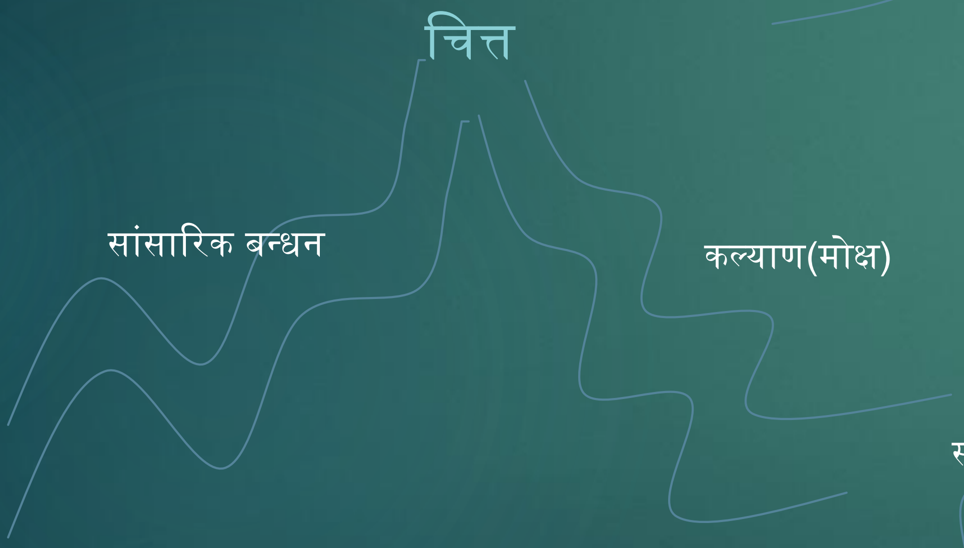

चित्र.२

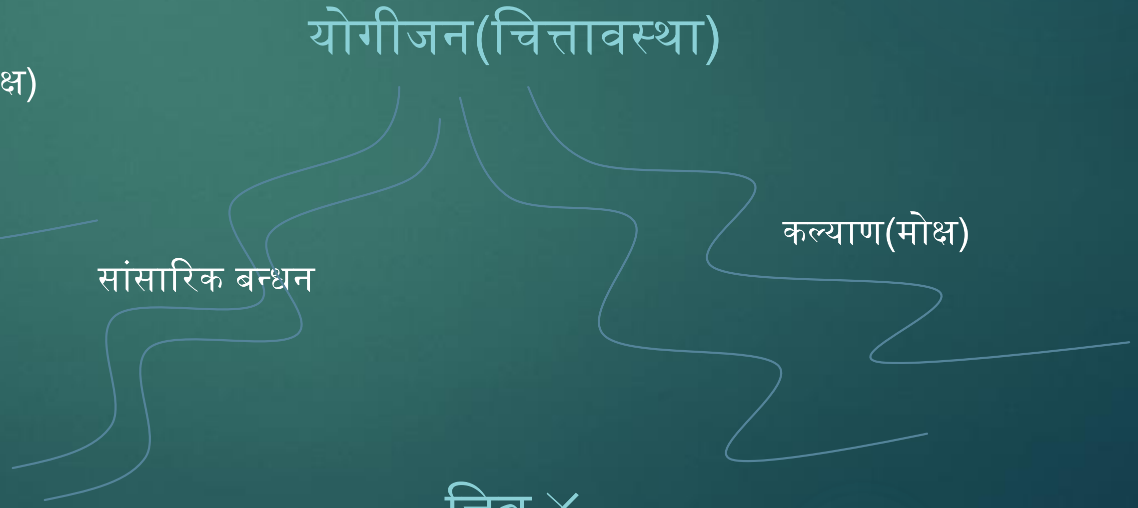

चित्र.४

चित्त या अन्त:करण प्रकृति का परिणाम का है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है अत: चित्त प्रकृति का परिणाम होने से चित्त भी त्रिगुणात्मक होता है। इन्हीं तीनों गुणों की विशिष्टता के कारण चित्त भी तीन प्रकार का होता है- प्रख्याशील(प्रकाशशील),प्रवृत्तिशील और स्थितिशील। निम्नलिखित चित्र के द्वारा चित्त के भेद व कार्यों को समझा जा सकता है-

चित्त के भेद

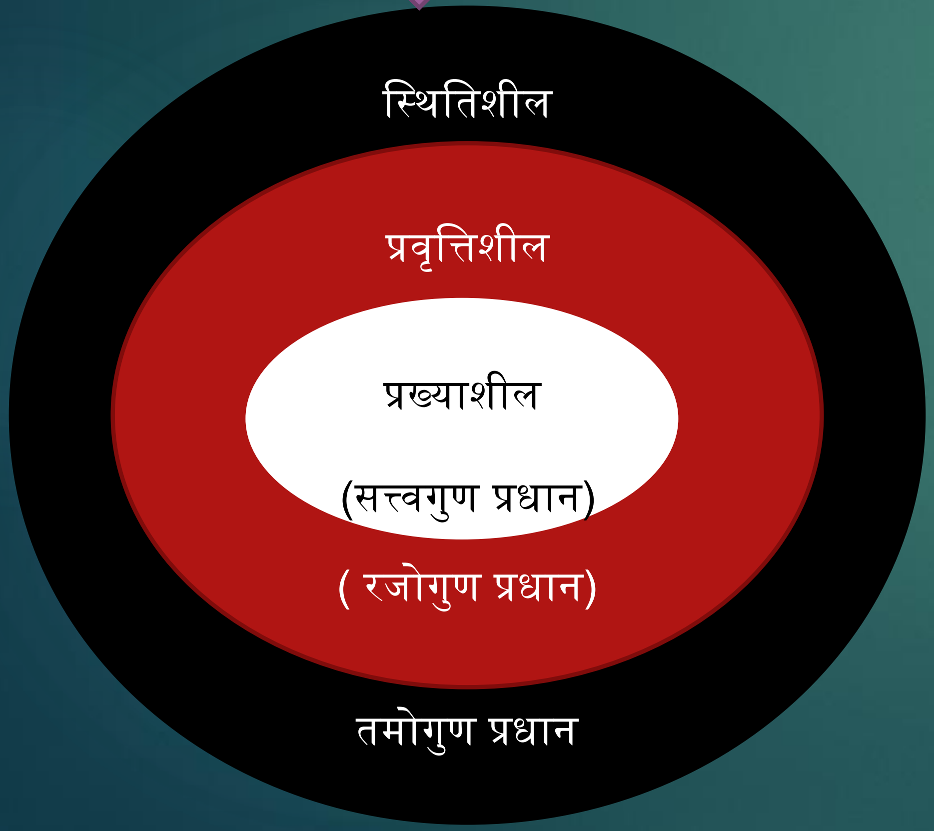

चित्त के कार्य या व्यवहार

सत्त्वगुण की प्रधानता के कारण चित्त धर्म,ज्ञान,वैराग्य और ऐश्वर्य में रत रहता है।

रजोगुण के प्रभाव के कारण चित्त विषयों के भोग की ओर प्रवृत्त होने लगता है।

तमोगुण की प्रधानता के कारण अधर्म,अज्ञान,राग तथा अनैश्वर्य आदि वृत्तियों में लगा रहता है।

चित्त की भूमियाँ

चित्त भूमियाँ		योग में उपादेय और अनुपादेय चित्त भूमियाँ
क्षिप्त मूढ विक्षिप्त		ये तीनों चित्त की भूमियाँ योग के लिए उपादेय नहीं हैं।
एकाग्र निरुद्ध	चित्त वृत्तियों का निषेध करके इन दोनों चित्त भूमियों को प्राप्त करना ही योग का लक्ष्य है।	योग के लक्ष्य

चित्त वृत्तियाँ

प्रमाण

१. प्रत्यक्ष

२. अनुमान

३. आगम

विपर्यय(क्लेश)

१. अविद्या (तमस)

२. अस्मिता (मोह)

३. राग (महामोह)

४. द्वेष (तामिस्र)

५. अभिनिवेश (अन्धतामिस्र)

विकल्प

निद्रा

१. सात्विक

२. राजसिक

३. तामसिक

स्मृति

१.भावित

२.अभावित

चित्तवृत्तियों के निरोध के उपाय

चित्तवृत्तियों के निरोध के उपाय

१ अभ्यास
२ वैराग्य
३ ईश्वरप्रणिधान
४ भावना चतुष्टय
५ प्राणायाम
६ विषयवती प्रवृत्ति
७ ज्योतिष्मती
८ वीतरागविषयकचित्त
९ स्वप्ननिद्राज्ञानावलम्ब
१० यथाभिमतध्यान

धन्यवाद